प्रवचन नं. १, कार्तिक कृष्ण १३, बुधवार, दिनांक ११-१२-१९७४, श्लोक-१

यह एक समाधिशतक अथवा समाधितन्त्र शास्त्र है। जिसमें आत्मा को सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की समाधि कैसे प्रगट हो और उसके फलस्वरूप मोक्ष कैसे हो, उसकी इसमें व्याख्या है। समाधि शब्द आता है। लोग्गस में नहीं आता? 'समाहिवरमुत्तमं दितु' वह समाधि सूक्ष्म बात है, भाई! आत्मा आनन्द-ज्ञानस्वरूप है, उसका अन्दर में ज्ञान में वेदन में राग और पुण्य-पाप के वेदन के विकल्प से भिन्न पड़कर, स्वरूप शुद्ध चैतन्य सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव ने जो वस्तु का स्वरूप आत्मा का कहा, वैसा अन्तर में जानकर अन्दर में स्थिर हो, इसका नाम मोक्ष का मार्ग है और इसका नाम समाधितन्त्र है। आहाहा! गजब बात!

यह समाधितन्त्र। पूज्यपादस्वामी हुए हैं। लगभग ५००-६०० वर्ष (हुए)। विक्रम संवत्। दिगम्बर मुनि थे, सन्त थे। उन्होंने इस जगत के कल्याण के लिये यह एक समाधिशतक बनाया है। इसकी टीका करनेवाले प्रभाचन्द्र हैं। उन्होंने इसकी टीका की है। उसका मंगलाचरण का पहला श्लोक है। समाधि का अर्थ यह बाबा चढ़ा देते हैं समाधि, वह समाधि यह नहीं है। लोग्गस में नहीं आता? 'समाहिवरमुत्तमं दिंतु।' परन्तु इसे अर्थ की खबर नहीं होती (कि) समाधि क्या कहलाती है। पहाड़े बोलते जाते हैं। पोपटभाई!

मुमुक्षु : हमने पहाड़े ही बोले थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहाड़े बोले थे? आहाहा!

आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप है। वह तो जाननेवाला-देखनेवाला उसका स्वभाव है। सवेरे जो आया था न कि भाई! प्रत्येक वस्तु की समय की जिस-तिस काल की पर्याय उस काल में उत्पन्न होती है, उस काल में पूर्व की पर्याय का व्यय होता है और ध्रुव अर्थात् वस्तु कायम रहती है। उसे जाननेवाला जो है आत्मा... आहाहा! होवे, उसे जाने; व्यय हो, उसे जाने; ध्रुव रहे, उसे जाने। आहाहा! ऐसा उसके ज्ञान का स्वभाव है। अनन्त काल में सम्यग्दर्शन क्या है, इसने उसे जाना नहीं, देखा नहीं, प्रगट नहीं किया। समझ में आया? इसके बिना करना... करना... करना... कुछ व्रत करना और कुछ तप करना और कुछ तपस्या करना, यह सब विकल्प है-राग है। आहाहा!

मुमुक्षु : कुछ न करना, वह तो अशुभभाव है, उसकी अपेक्षा शुभभाव करे तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभभाव है, वह विकार है-दुःख है।

यहाँ तो शुभभाव को होने के काल में ज्ञान उसे जाने, ऐसी पर्याय भी स्वतन्त्र उत्पन्न होती है। आहाहा! वीतराग का मार्ग बहुत सूक्ष्म है। जगत को मिला नहीं। जैन के नाम से अजैन परोसा है। आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा तीर्थंकरदेव ऐसा कहते हैं कि समाधि अर्थात् कि सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र। अर्थात् कि ज्ञायक चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा को दृष्टि में लेकर उसकी अनुभव करके प्रतीति करना और उस स्वरूप में स्थिर होना, वह चारित्र है। यह तीन होकर समाधि कहने में आता है। बाबा चढ़ा दे समाधि, वह यह बात नहीं है। आहाहा!

आत्मा चैतन्यघन जो आनन्द का नाथ है, उस अनाकुल आनन्द और शान्ति का स्वभाव उसका-आत्मा का है। उसे पर्याय में-उसकी दशा में.... वह वस्तु ऐसी ध्रुव है, उसकी दशा में उसका वेदन करना। आहाहा! मैं ज्ञान ही हूँ, आनन्द हूँ। यह क्रियाकाण्ड के जो विकल्प उठते हैं, वह भी मैं नहीं। आहाहा! ऐसी आत्म चीज़ के अन्दर सहजानन्दस्वरूप प्रभु आत्मा, के सन्मुख की दृष्टि, उसके सन्मुख का ज्ञान और उसके सन्मुख की स्थिरता (होना), उसे यहाँ मोक्ष का मार्ग कहते हैं, उसे यहाँ समाधि कहते हैं। समझ में आया?

आचार्य तो कहते हैं कि मोक्ष के अभिलाषी जीव के लिये मैं यह एक मोक्ष का

मार्ग समाधि कहूँगा। जो अनन्त काल में इसने एक समयमात्र ही नहीं की। जो किया इसने पुण्य और पाप के विकल्प के दया, दान, व्रत, भक्ति, (शुभ) काम, क्रोधादि का भाव, वह अशुभ। दया, दान, व्रत, भक्ति, तप का भाव वह शुभ। दोनों विकल्प है, दोनों राग है। आहाहा! दोनों असमाधि है। उसे इसने अनन्त बार किया और दुःखी होकर चार गति में भटकता है। परन्तु यह प्रभु स्वयं ही मूल स्वभाव इसका है, ज्ञान और आनन्द और शान्त अकषाय स्वभाव है, उसके अन्तर में जाकर स्थिर होना। स्थितप्रज्ञ। आहाहा! यह ज्ञानस्वभाव चैतन्य वस्तु में दृष्टि करके स्थिर होना, उसमें आनन्द की दशा का अनुभव हो, उसे यहाँ मोक्ष का मार्ग कहते हैं। उसे यहाँ समाधि कहते हैं। समझ में आया?

'समाहिवरमुत्तमं दिंतु'। हे सिद्ध भगवन्त! देते कुछ नहीं परमात्मा किसी को। परन्तु इसे अपनी प्रार्थना में 'समाहिवरमुत्तमं दिंतु।' मेरी आनन्द-शान्ति, मेरे स्वरूप में स्थिर होना, ऐसी जो समाधि उसका वरदान हे प्रभु! मुझे दो। आहाहा! यह तो एक भक्ति में प्रार्थना है। वे कुछ देते नहीं। परमेश्वर के पास इसकी मुक्ति नहीं कि परमेश्वर इसे दे। हैं? तीर्थंकर सर्वज्ञदेव परमात्मा के पास तो उनकी समाधि और शान्ति उनके पास है। वह कहीं दूसरे को देते नहीं, परन्तु विनयवन्त ऐसी एक प्रार्थना में भाव ऐसा आवे। हे प्रभु! मेरा आनन्दस्वभाव आपने जो वर्णन किया और कहा, वह मुझे समाधि दो। आहाहा! मुझे शान्ति दो, शान्ति। पुण्य-पाप के राग बिना की दशा मुझे प्राप्त होओ। ऐसा कहते हुए प्रभु को कहते हैं कि, मुझे दो। वे देते नहीं। ईश्वर कोई ऐसा नहीं कि तुझे कुछ दे देवे। समझ में आया? आहाहा!

यह स्वयं ही ईश्वर है। सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वज्ञ तीर्थंकर ने देखा ऐसा। सत् अर्थात् शाश्वत् कायम और जिसका ज्ञान और आनन्द, शान्ति, जिसका स्वभाव है, उसका वह स्वरूप है। शान्ति और आनन्द की वह आत्मा खान है। आहाहा! इस खान में नजर देने से, अन्यत्र से नजर उठाकर जहाँ पूर्ण आनन्द पड़ा है, प्रभु आत्मा में, भगवान ने प्रगट किया, वह अन्दर था, उसमें से प्रगट किया.... आहाहा! यह अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद अन्तर में आना, उसे यहाँ समाधि और उसे मोक्ष का मार्ग कहते हैं। चन्दुभाई! ऐसी बात है। आहाहा! जिसने अनन्त काल में एक समयमात्र भी अपनी

जाति को जाना नहीं, जाति में भात पाड़ी नहीं, जाति क्या इसकी चीज़ है प्रभु आत्मा, उसे इसने पहिचाना नहीं। उसे इसके विश्वास में इसने लिया नहीं तो उसमें स्थिरता तो कहाँ से हो? ऐसा वस्तु का स्वरूप है। यह कहते हैं, देखो!

मूल श्लोक और संस्कृत टीका का गुजराती अनुवाद। मंगलाचरण करते हैं।

सिद्धं जिनेन्द्रममलाऽप्रतिमप्रबोधम्
निर्वाणमार्गममलं विबुधेन्द्रवन्द्यम्।
संसारसागरसमुत्तरणप्रपोतं वक्ष्ये
समाधिशतकं प्रणिपत्य वीरम्॥ १॥

वीर परमात्मा तीर्थंकरदेव पूर्ण आनन्द को प्राप्त हुए प्रभु, उन्हें मैं वन्दन करता हूँ, कहते हैं। वे **सिद्ध,....** हुए वीर। अपनी दशा पूर्ण थी, उसे परमात्मा ने प्रगट किया। **अनुपम ज्ञानवान्,....** वीर परमात्मा अनुपम ज्ञानवान है। जिनके ज्ञान को कोई उपमा नहीं। ओहो! सर्वज्ञ केवलज्ञानी अर्थात्? आहाहा! जिनकी एक समय की ज्ञान की दशा में तीन काल-तीन लोक को जाननेरूप ज्ञान की पर्याय परिणमे। आहाहा! ऐसे अनुपम ज्ञान के धारक परमात्मा को मंगलाचरण में वन्दन करता हूँ। समझ में आया?

(अनन्तज्ञानी).... अनुपम ज्ञान का अर्थ किया है। जिनकी ज्ञान की पर्याय—तीर्थंकरदेव की केवलज्ञानी की अनुपम ज्ञानपर्याय! उसे उपमा क्या देना! ओहोहो! णमो अरिहन्ताणं ऐसे जिसने राग और द्वेष और अज्ञानरूपी अरि का नाश किया और जिसने केवलज्ञान और आनन्द जिसने प्रगट किया। आहाहा! ऐसे अनन्त ज्ञानवन्त अनुपम ज्ञानधारी प्रभु और **निर्वाणमार्गरूप, निर्मल....** यह मोक्ष का मार्ग है। वीर स्वयं मोक्ष का मार्ग कहते हैं अथवा वे स्वयं मोक्ष के मार्गस्वरूप हैं। निर्मल मोक्ष का मार्ग। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त करके जिन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया है।

देवेन्द्रों से वन्दनीय.... जो देव के इन्द्र भी जिन्हें वन्दन करते हैं। सौ इन्द्र वन्दन करते हैं। आहाहा! यह तो वीरशासन चलता है न! भगवान महावीर परमात्मा का (शासन) इसलिए वीरशासन में पहले वीर को वन्दन किया। वैसे तो भगवान सीमन्धरस्वामी विराजते हैं। महाविदेहक्षेत्र में साक्षात् तीर्थंकर परमात्मा केवलज्ञानीरूप

से सीमन्धरस्वामी महाविदेह में अभी विराजते हैं। करोड़ पूर्व का जिनका आयुष्य है। पाँच सौ धनुष की जिनकी देह है। दो हजार हाथ ऊँची जिनकी देह है। अभी सामायिक में नहीं प्रतिज्ञा—आज्ञा लेते? सीमन्धरस्वामी.....

मुमुक्षु : प्रतिक्रमण के समय लेते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रतिक्रमण के समय लेते हैं। परन्तु किसे खबर क्या है? जय भगवान! यह सर्वज्ञ भगवान परमात्मा वर्तमान में मनुष्यदेह में विराजमान हैं। इस पृथ्वी पर महाविदेह में हैं। उन्हें वन्दन न करके इन्हें क्यों किया? कि इनका वीरशासन चलता है। समझ में आया? और एक को वन्दन करने से उसमें अनन्त को वन्दन आ जाता है। आहाहा!

कहते हैं कि जो **देवेन्द्रों से वन्दनीय....** देव के इन्द्रों से भी जो पूजनीय हैं। आहाहा! **तथा संसार सागर को पार करने के लिये उत्कृष्ट नावरूप**- हैं। निमित्त से बात करते हैं न! सर्वज्ञ परमात्मा वीतराग वीर प्रभु, उन्हें जो केवलज्ञान हुआ और फिर मार्ग जो कहा, वह मार्ग तो संसार सागर को पार उतारने के लिये नावरूप है। उन्होंने जो मार्ग कहा, उसमें जो बैठे, वह नाव से जैसे पार पड़े, वैसे संसार से पार पड़े और किनारे-मोक्ष में चला जाये। आहाहा! पूर्ण शान्ति और आनन्द का स्वभाव प्रभु का, उसमें जो जाये, स्थिर हो.... भगवान ने यही नाव कही है। समझ में आया? मार्ग निश्चय—सत्य मार्ग ऐसा सूक्ष्म है कि लोगों को हाथ आया नहीं और सुना नहीं। बाहर की सिरपच्ची में पड़े हैं और तत्त्व-पूरी बात जो सत्य है, वह पूरी रह गयी। और इसका जीवन चला जाता है, भाई! ऐसा जीवन देह के अन्त की स्थिति के समीप जाता है। आहाहा! उसमें यदि यह काम नहीं किया.... आहाहा!

भगवान नाव समान है, कहते हैं। आहाहा! तीन लोक के नाथ वीर परमात्मा ने केवलज्ञान की व्याख्या का स्वरूप कहा, वे प्राप्त हुए, उसकी बात की। और वह कैसे प्राप्त हो, उसकी उन्होंने बात की। आहाहा! यह मार्ग कहीं बाहर से नहीं आता। अन्दर में है।

भगवान पूर्णानन्द का नाथ आत्मा पूर्ण (स्वरूप है)। दृष्टान्त इसमें ऐसा दिया है,

देखो! अपने छोटी पीपर का देते हैं न, वह इसमें यहाँ दिया है। छोटी पीपर नहीं? इन्होंने सुना था न यह समाधिशतक? उसमें आया था कहीं छोटी पीपर का दृष्टान्त। आत्मधर्म में है... कहीं है सही। छोटी पीपर का दृष्टान्त है कहीं, हों! छोटी पीपर समझ में आयी? यह पीपर नहीं होती वह? चौसठ पहर घोंटे और चौसठ पहरी चरपराहट आवे। वह पीपर-पीपर। पीपर का दाना होता है न। ऐई! यह कहीं आया अवश्य है। इन्होंने सुना हुआ है न। छोटी पीपर। देखो! १६वें पृष्ठ पर है।

जिस प्रकार छोटी पीपर के दाने-दाने में चौसठ पहरी चरपराहट की सामर्थ्य भरी है.... यह तो बहुत बार व्याख्यान में (दृष्टान्त) देते हैं न! छोटी पीपर का दाना छोटा, रंग काला परन्तु उसमें चौसठ पहरी चरपराहट। वह तो अब सौ पैसे का रुपया हुआ न? बाकी चौसठ पैसे का रुपया था न? अर्थात् चौसठ पैसे अर्थात् रुपया... रुपया चौसठ पहरी चरपराहट अन्दर भरी है। वह घोंटने से आती है, वह कहीं पीपर में बाहर से नहीं आती। आहाहा! उसमें चौसठ पहरा चरपरा रस, चरपरा रस सोलह आना-रुपया... रुपया-चौसठ पैसा-चौसठ पहरी पड़ा है। है न? **चरपराहट की सामर्थ्य भरी है, उसी प्रकार आत्मा का स्वभाव परिपूर्ण ज्ञान-आनन्द से भरपूर है....** आहाहा! यह बात इसे जँचे। यह आत्मा देह प्रमाण होने पर भी देह के रजकण से तो भिन्न तत्त्व प्रभु है। यह (देह) तो मिट्टी है। वाणी मिट्टी है। उससे भिन्न भगवान चैतन्यस्वरूप जो है, वह छोटी पीपर की भाँति, उसमें जैसे रुपया-रुपया (पूर्ण) चरपराहट और हरा रंग उसमें पड़ा है। बाहर में काला है और अल्प चरपराहट है, वह फिर नहीं रहती। अन्दर में हरा रंग और चरपराहट जो पूरी है, वह प्रगट होती है। उसी प्रकार भगवान आत्मा में.... आहाहा! शरीर प्रमाण उसका कद होने पर भी और पुण्य-पाप के मैल की कालिमा दिखने पर भी उसके स्वरूप में तो पूर्ण-पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनन्द पड़ा है। कहो, समझ में आया? आहाहा!

परन्तु उसका विश्वास करके अन्तर्मुख होकर उसमें एकाग्र हो तो वह ज्ञान-आनन्द का स्वाद अनुभव में आवे। आहाहा! जैसे उस पीपर के दाने में चौसठ पहर अर्थात् रुपया-रुपया (पूर्ण) चरपरा रस और हरा रंग पड़ा है, परन्तु प्रगट हो, तब उसमें से बाहर आता है। उसी प्रकार भगवान आत्मा में ज्ञान और आनन्द की पूर्ण शक्ति, पूर्ण

शक्ति अस्ति अभी यहाँ अन्दर पड़ी है। आहाहा! उसका जब स्वीकार अन्तर सन्मुख होकर जिस प्रकार से है, पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान, उसका सम्यक् श्रद्धा में, सम्यग्ज्ञान में स्वीकार हो, तब उसे आनन्द की दशा का वेदन आता है। आहाहा! उस आनन्द की दशा का वेदन आवे , उसे धर्म कहते हैं। ऐसा वीतराग धर्म है, बापू! आहाहा! समझ में आया? बाकी सब बातें हैं। यह करो और वह करो और अपवास किये, यह किया, वह सब विकल्प की-राग की जाति है। आहाहा! उसकी जाति में जाकर भगवान, उसकी जाति चौसठ पहरी ज्ञान और आनन्द से परिपूर्ण भरपूर प्रभु है। यह कैसे जँचे? अल्पज्ञ दशा में रही हुई क्रीड़ाओं में उसे यह पूर्ण है, यह कैसे जँचे अन्दर में?

मुमुक्षु : छोटी पीपर का जँचता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका जँचता है। यह तो इसने गाँधी (पंसारी) के निकट सुना हो।

वढ़वाण में करते थे। डाह्या जेठा थे न? डाह्या जेठा थे वढ़वाण में, नहीं? रायचन्द गाँधी के रिश्तेदार थे। वे घर में बनाकर रखते। २००, ४००, ५०० यह पीपर चौसठ पहरी। भैया बोलावे न। बहुत वर्ष की बात है। (संवत्) १९७६ में तो वे गुजर गये। तब मैं वहाँ था। ७६ के वर्ष में वढ़वाण (में) गुजर गये। डाह्या जेठा। दूसरा क्या उसके छोटे भाई? नागर जेठा। नागर जेठा। छोटा भाई नागरभाई। सबको पहचानूँ न। कपड़े की दुकान (थी)। वे घर में भैया के पास घूंटाते थे चौसठ पहरी। गृहस्थ व्यक्ति न! कोई गरीब व्यक्ति आवे उसे मुफ्त में दे। आधा भाग, पाव भाग जितनी हो, उतनी मुफ्त। २००, ४००, ५०० बनाकर रखते थे। वे डाह्या जेठा।

इसी प्रकार सर्वज्ञ ने कर रखी हुई बात है, कहते हैं। डाह्या जेठा। डाह्या, वह हुआ जेठा। आहाहा! जिसे अन्तर अनन्त ज्ञान और आनन्द जो पड़ा है, उसे अन्तर में घूँटकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र द्वारा जिसने ज्येष्ठ पद डाह्या ने प्रगट किया। ऐई! वह यहाँ भगवान दूसरे को देते हैं—कहते हैं कि भाई! तेरा स्वरूप ऐसा है न, भाई! आहाहा! तुझे कहीं बाहर से लेने जैसा, ऐसा है नहीं। आहाहा! यह तुझे जँचता नहीं, भाई! तेरी नजर में यह आया नहीं। आहाहा! ऐसा ज्ञान और आनन्द का पूर्णरूप, ऐसा जो जीव

स्वरूप, ऐसा जो आत्मभाव.... आहाहा! उसे प्रतीति में और ज्ञान में ज्ञेयरूप से लेना और उसमें स्थिर होना, तब उसे आनन्द और ज्ञान जो शक्तिरूप से थे, वे पर्याय में जैसे वह चौसठ पहरी चरपराहट बाहर आती है। पहले एक पहर, दो पहर, चार पहर ऐसे आवे। उसी प्रकार साधक स्वभाव में प्रथम सम्यग्दर्शन-ज्ञान में वह पूरी प्रगटता पर्याय में नहीं आती। समझ में आया?

घूँटने से तो पहले कहीं चौसठ पहरी तुरन्त हो जाये? पहले एक पहरी, दो पहरी, चार पहरी, ऐसे होता है। उसी प्रकार भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द और ज्ञान के स्वभाव से भरपूर प्रभु, उसका जो सम्यग्दर्शन और ज्ञान हुआ, उसे अमुक पहरी जैसे चरपराहट प्रगट हुई, उसी प्रकार अमुक दशा प्रगट हुई। और वह दशा प्रगट होने पर अन्दर में एकाग्रता करते.... करते.... करते.... पूर्ण केवलज्ञान दशा प्रगट हो जाती है। इस मार्ग के कारण (प्रगट हो जाती है)। आहाहा! समझ में आया? इस चैतन्य के स्वभाव में घोंटने से, एकाग्र होने से वह केवलज्ञानरूपी चौसठ पहरी चरपराहट जैसे प्रगट हो, वैसे केवलज्ञान परमात्मा को प्रगट हुआ। उसी विधि से परमात्मा ने जगत को प्रगट करने की विधि कही। अपूर्व बात है, बापू! लोग मानते हैं कि ऐसे सामायिक की, प्रतिक्रमण किये, यह प्रौषध किये और धर्म (हो गया)। अरे! भाई! तुझे अभी खबर नहीं, बापू! सामायिक किसे कहना? आहाहा! और प्रतिक्रमण किसे कहना? प्रौषध किसे कहना? आहाहा! यह तो भगवान पूर्ण आनन्द और ज्ञानस्वरूप पूर्ण है, उसकी एकाग्रता से जो पर्याय में शुद्धि, शान्ति, वीतरागता और अतीन्द्रिय आनन्द आवे, उसे प्रौषध और उसे सामायिक कहते हैं। पोपटभाई! ऐसी सामायिक तो दूसरी बहुत की है। दरियापरी के उपाश्रय में करते थे? वढ़वाण।

मुमुक्षु : एक तो.....

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों। यह तो सब हम भी करते थे, बापू! पहले हमारी दुकान में। वस्तु क्या भी, खबर किसे थी? दुकान पालेज में, सब हम करते थे। सामायिक करते, अपवास करते। चार-चार (सामायिक) ऐसा तो नहीं करते थे। क्योंकि तब छोटी उम्र न। आहाहा! उसका फल मिथ्यात्व है। (उसे) धर्म माना। पोपटभाई! आहाहा!

प्रभु कहते हैं, वह तो निर्वाण का मार्ग कहनेवाले अथवा निर्वाण का मार्ग ही परमात्मा है। उन्हें जिसने पहिचाना सर्वज्ञ परमात्मा को, उसकी सम्यक् दृष्टि हुई, वह उसकी नाव है। वह भगवान ने कहे हुए इस मार्ग की मार्ग में बैठे, उसे संसार का अन्त आये बिना नहीं रहता। आहाहा! परन्तु बापू! मार्ग बहुत सूक्ष्म, हों! मार्ग कोई अपूर्व है! दुनिया मान बैठती है कि हम साधु हो गये, यह स्त्री-पुत्र छोड़े, इसलिए साधु हुए। बापू! (दशा) सूक्ष्म बातें हैं, भाई! समझ में आया? आहाहा! अभी सम्यग्दर्शन किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती और उसे साधुपना आ जाये। आहाहा!

कहते हैं कि प्रभु परमात्मा स्वयं नाव है। आहाहा! कहा न? **संसार सागर को पार करने के लिये उत्कृष्ट नावरूप - ऐसे वीर जिनेन्द्र....** उन्होंने कहे हुए भाव को जो अन्दर प्रगट करे, उस नाव द्वारा संसार का पार आवे। समझ में आया? आहाहा! **ऐसे वीर जिनेन्द्र भगवान को प्रणिपात करके...** नमन करके **मैं समाधिशतक कहूँगा।** टीकाकार कहते हैं कि मैं इस समाधिशतक की टीका करूँगा।

अब स्वयं ग्रन्थकर्ता जो सिद्धान्त समाधिशतक कर्तापुरुष महामुनि थे। दिगम्बर मुनि। जैन में जैनरूप से दिगम्बर (रहे हुए) मुनि को ही मुनि कहा जाता है। ऐसा अनादि का मार्ग था। फिर लोगों ने बदल डाला। समझ में आया? अनादि तीर्थंकर सर्वज्ञ परमेश्वर, उन्होंने जो मुनिमार्ग कहा, वह तो अन्तर में तीन कषाय का अभाव होकर और वीतरागता अन्दर में प्रगट हो, उनकी दशा नग्न हो जाती है। उन्हें वस्त्र का टुकड़ा भी नहीं रहता। आहाहा! ऐसे मुनिवर वे जंगल में बसते हैं, वे गाँव में नहीं होते। समझ में आया? ऐसे समाधिशतक के करनेवाले मुनि पूज्यपाद ऐसे थे। वे मुनि स्वयं। परम..., ऐसा कहा जाता है कि भगवान के पास गये थे।

जिस प्रकार कुन्दकुन्दाचार्य संवत् ४९ में परमात्मा—सीमन्धर परमात्मा के पास गये थे। अभी सीमन्धर भगवान तो विराजते हैं। उनका तो आयुष्य लम्बा करोड़ पूर्व का है। विराजते हैं। मनुष्यरूप से समवसरण में, दिव्यध्वनि का उपदेश होता है। इच्छा बिना ॐ ध्वनि निकलती है। इन्द्र और गणधर सुनते हैं, बाघ और सिंह जंगल में से आकर भी सुनते हैं। महाविदेहक्षेत्र है जमीन पर। समझ में आया? वहाँ आगे यह

पूज्यपादस्वामी गये थे, ऐसा आता है। पहले लिखा है, इन्होंने बहुत सब। प्रस्तावना में (लिखा है)। और देव जिनके पैर पूजते-पाद पूज्य—ऐसी तो जिनकी लब्धि थी। ऐसी एक लब्धि थी कि पैर में चोपड़े तो अध्धर आकाश में चले जायें। महाब्रह्मचारी ब्राह्मण थे। ब्राह्मण। ब्रह्म चिन्हे सो ब्राह्मणा। आत्मा ब्रह्मानन्द भगवान सर्वज्ञ ने कहा ऐसा आत्मा को जानकर अनुभव करे, उसे ब्राह्मण कहते हैं। समझ में आया? वह ब्राह्मण हुए, सच्चे ब्राह्मण हुए। ब्राह्मण की जाति में जन्मे हुए, परन्तु पश्चात् वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर का मार्ग मिला अन्दर में.... आहाहा! बाल ब्रह्मचारी थे। संवत् ५००-६०० के लगभग वर्ष में। समन्तभद्राचार्य के पश्चात्। समन्तभद्राचार्य दिगम्बर मुनि हुए, वे भगवान के पश्चात् २०० वर्ष में हुए। भगवान के पश्चात् बहुत वर्ष में परन्तु संवत् २००। विक्रम संवत् २००। भगवान के बाद ४०० वर्ष में। उनके पश्चात् यह हुए पूज्यपादस्वामी। ओहोहो! धर्म के स्तम्भ। नग्न मुनि दिगम्बर। जिन्हें एक वस्त्र का टुकड़ा न हो। समझ में आया? जिन्हें एक मोरपिच्छी और कमण्डल, दो उपकरण होते हैं। और अन्तर की झूलती दशा। जैसे झूले में झूले और झूले। उसी प्रकार अन्दर में अतीन्द्रिय आनन्द में घड़ीक में आवे, घड़ीक में विकल्प उठे जरा पंच महाव्रतादि का। वह विकल्प है, राग है। ऐसी दशा में झुलते थे। समाधिशतक के करनेवाले मुनि ऐसे थे। आहाहा! और जो मुनि हों, वे सब ऐसे ही होते हैं। समझ में आया? अभी तो उल्टा पड़ गया। सब घोटाला हो गया है। वस्त्र-पात्र रखते हैं। अभी तो श्रद्धा की खबर नहीं होती। हम यह मुनि हैं, उसे मानते और मनाते हैं। सब दशायें उल्टी हैं, बापू! आहाहा! समझ में आया? गिरधरभाई! यह सब सेठिया वढवाण के।

कहते हैं, **पूज्यपादस्वामी....** यह इसका अर्थ किया पहले। पूज्यपादस्वामी ऐसे थे। आहाहा! ब्राह्मण थे, फिर मुनि हुए। आत्मज्ञान होकर, स्वरूप का वेदन होकर.... आहाहा! और सम्यग्दर्शन (हुआ)। सम्यग्दर्शन अर्थात् आत्मा के आनन्द का वेदन है। आहाहा! और उसमें—स्वरूप की रमणता में जम गये, ऐसे जो **पूज्यपादस्वामी (इस समाधितन्त्र के रचयिता)....** व्यवहार से तो ऐसा कहा जाये न? बाकी सवेरे इनकार किया था। कल, कल न? शास्त्र की रचना आत्मा नहीं कर सकता। आहाहा! एक अक्षर जो है, वह अनन्त रजकण से बना हुआ है। उसे आत्मा नहीं कर सकता।

आहाहा! परन्तु निमित्त कौन था, ऐसा जानकर समाधिशतक उन्होंने बनाया, ऐसा कहने में आता है। आहाहा!

एक अक्षर जो बोला जाता है, वह आत्मा से नहीं बोला जाता। वह अक्षर अनन्त रजकण से बनी हुई एक स्कन्ध की दशा है। आहाहा! उसे आत्मा अक्षर को बनावे, यह तीन काल में नहीं होता। परन्तु निमित्त कौन था, ऐसा बतलाने के लिये **(समाधितन्त्र के रचयिता)....** ऐसा कहा। समझ में आया? आहाहा! पर्याय के स्वकाल में पर्याय होती है, ऐसा जो कहा है न, और स्वकाल में उस पूर्व की पर्याय का व्यय होता है, वह भी उसी समय में। और ध्रुव (रहे)। ऐसा कहकर यह कहा है कि आत्मा तो जाननेवाला ही है, बस। वह किसी पर्याय को करे, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! पर्याय के काल में पर्याय होती है। पूर्व की पर्याय का-मिथ्यात्व का व्यय होता है, समकित की उत्पत्ति होती है, ध्रुवरूप से रहता है—ऐसा ज्ञान जानता है। इसका नाम ज्ञाता और दृष्टा वर्णन किया है। समझ में आया? आहाहा!

इसके जानने-देखने के स्वभाव के अतिरिक्त यदि आगे जाकर कुछ भी माने कि मैंने यह दया का भाव किया, मैंने पर की दया पालन की, अत्यन्त मिथ्यात्वभाव है। मिथ्यादृष्टि की दृष्टि में मिथ्यात्व है। आहाहा! पोपटभाई! कहो। यह टाईल्स का धन्धा मैंने किया। वढवाण से वहाँ गये तो कुछ धन्धा और मेहनत की होगी तो पैसे हुए होंगे या नहीं? ऐसे के ऐसे हुए होंगे? कोई कहते है कि दो करोड़ हुए। कोई और कहता है, पाँच करोड़ हुए। कोई और ऐसा कहता था। वे जड़ के रजकण हैं, बापू! वे तो जड़ के कारण से आये हैं। आत्मा ने कमाने का राग किया, इसलिए आये हैं, (ऐसा तीन काल में नहीं है)।

मुमुक्षु : हमारे पास किसलिए आये?

पूज्य गुरुदेवश्री : उनकी क्षेत्रान्तर होने की उनकी शक्ति है तो उसके कारण से आते हैं। क्षेत्रान्तर होना (ऐसी) क्रियावर्तीशक्ति रजकण में है। रजकण में क्रियावर्ती अर्थात् क्षेत्रान्तर होना, वह उसका स्वभाव है। उसके कारण वह यहाँ आये हैं। इन पोपटभाई के कारण वहाँ पैसे नहीं आये।

मुमुक्षु : निमित्तपना तो रखना न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त की व्याख्या क्या ? एक था पुरुषार्थ करनेवाला राग का इतना निमित्त। परन्तु उससे पैसे आये उसके कारण से, इस बात में कुछ माल नहीं है। मिथ्यादृष्टि ऐसा मानता है कि मैंने यह कमाया, इसलिए पैसे आये। लो ! यह भी लेते थे न (एक) दिन के ? कोर्ट में जाते थे। तीस वर्ष पहले की बात है। दो सौ रुपये लेते थे। यह रामजीभाई। कोर्ट में (जाते) तो होशियारी से लेते थे न ?

मुमुक्षु : मुफ्त में कोई दे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं। ऐई ! इसे यह देखो न, पन्द्रह सौ का वेतन छोड़ा न। पन्द्रह सौ का मासिक वेतन। ब्रह्मचारी है। यह कान्तिभाई। यह पन्द्रह सौ का वेतन मासिक छोड़ दिया। नौकरी छोड़ दी। छोड़ दी, सच्ची बात ? कौन नौकरी करता था ? वहाँ राग करता था, राग। प्लेन में ऐसा है, ऐसा हो और ऐसा हो। प्लेन में थे न ? मुम्बई। पन्द्रह सौ का (वेतन)। गत वर्ष नौकरी छोड़ दी। अठारह हजार बारह महीने में। अब उसमें धूल में क्या है ?

तीन लोक का नाथ हाथ आवे, वहाँ जिसमें लक्ष्मी का पार नहीं। आहाहा ! चैतन्य भगवान जिसमें अनन्त ज्ञान और आनन्द की लक्ष्मी पड़ी है। अरे ! तुझे कैसे जँचे ? भाई ! आहाहा ! एक बीड़ी पीवे, वहाँ इसे ऐसा हो जाये मानो.... आहाहा ! मानो मस्तिष्क तेज हो गया। और सवेरे पाव सेर चाय पीवे, डेढ़ पाव सेर उकाला। तब इसे मस्तिष्क अच्छा ठीक हो जाये। आहाहा ! ऐसे व्यसन के माननेवाले। तेरी भ्रमणा है प्रभु ! तुझे, कहते हैं। भाई ! तू तो आनन्द का नाथ है, ज्ञान का सागर है। इस ज्ञान की उत्पत्ति तेरे स्वभाव में से आयी हुई है। आहाहा ! वह वाणी सुनने से भी नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? इस प्रकार वीतराग सर्वज्ञ का मार्ग तो यह है। वाणी से वहाँ ज्ञान नहीं होता। आहाहा !

इसका भगवान अन्दर जो ज्ञानस्वभाव है, उसका पर्याय में विकास होता है, उस पर्याय की उत्पत्ति उसके कारण से होती है। आहाहा ! यह सुनने के लक्ष्य से जो ज्ञान की पर्याय लक्ष्य में आयी, हुई, वह भी कहीं सम्यग्ज्ञान नहीं है। आहाहा ! क्योंकि उस

परलक्ष्य में रहने से पर्याय का विकास हुआ। वह आत्मज्ञान नहीं, वह ज्ञान की दशा नहीं। आहाहा! वह उपयोग अचेतन-जड़ है। आहाहा! जिसमें भगवान ज्ञायकस्वरूप से अन्दर विराजमान हैं, वह कली खिले अन्दर से। उसके स्वभाव पर दृष्टि जाने से उस शक्ति में से व्यक्तता ज्ञान की आंशिक शान्ति और आनन्द लेती दशा जो प्रगट हो, उसे ज्ञान कहते हैं। वीतराग के मार्ग में ज्ञान की बातें अलग, बापू! पूरी दुनिया से अलग है। और ऐसा स्वरूप वीतराग सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं है नहीं, किसी ने कहा नहीं, किसी ने जाना नहीं। समझ में आया? आहाहा!

ऐसे समाधितन्त्र के रचनेवाले मुनि, वीतरागी सन्त आनन्दकन्द में झूलनेवाले। आहाहा! जिसे वस्त्र का टुकड़ा भी नहीं हो, और आचार्य तो कहते हैं कि वस्त्र का टुकड़ा रखकर भी हम मुनि हैं—ऐसा माने, मनावे, निगोद में जायेगा। ऐई! पोपटभाई! बापू! मार्ग ऐसा सूक्ष्म है, भाई! आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ का मार्ग ऐसा है कि ऐसा कहीं अन्यत्र मिले—ऐसा है नहीं। समझ में आया? ऐसे ये मुनि थे। बालब्रह्मचारी अतीन्द्रिय आनन्द में झूलनेवाले। झूलते-झूलते एक विकल्प आया, वृत्ति-शुभराग उठा, उसके वे कर्ता नहीं थे। और यह शास्त्र के शब्दों की रचना शब्दों से हुई है। आहाहा! गजब! यह तो सवेरे ही कहा है न? .... कल कहा था न?

यह वाणी जड़, वह ध्वनि जड़ की है। उसे आत्मा करे? आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है, उसमें से वाणी उठना कहाँ से हो? वाणी का उठना होता है, वह जड़ में से, परमाणु में से, रजकण में से, पुद्गल में से होता है। आहाहा! अरे! कैसे जँचे इसे बात? यह अजीव की पर्याय होती है, उसे ऐसा मानता है कि मुझसे हुई। उसने जीव को अजीव माना। आहाहा! उसने जीव को अजीव माना, उसे मिथ्यात्व का पाप लगता है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षुओं के लिये मोक्ष का उपाय.... अब यह रचकर इसमें क्या बताया है? **मुमुक्षुओं को....** भाषा ऐसी है न? आहाहा! जिसे अन्तर में पूर्णानन्दस्वरूप प्रगट करने की जिज्ञासा है, उसे मुमुक्षु कहा जाता है। जिसे आत्मा पूर्ण आनन्दरूपी मुक्ति-अनन्त केवलज्ञानरूपी दशारूपी मुक्ति की जिसे जिज्ञासा है, उसे यहाँ मुमुक्षु-धर्म का इच्छुक

उसे कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? पुण्य को करना और यह छोड़ना और यह रखना वह यह नहीं। आहाहा! जैसा उसका मुक्तस्वरूप है, प्रभु का मुक्तस्वरूप ही है अन्दर। आत्मा मुक्त है। वस्तु मुक्त है। राग से भिन्न वस्तु है। आहाहा! ऐसी ही भिन्नता की जिसकी दशा प्रगट करने की भावना है, उसे धर्मी जीव की जिज्ञासावाला उसे कहते हैं। आहाहा! उसे धर्म की जिज्ञासावाला कहते हैं।

उसे **मोक्ष का उपाय....** पूर्णानन्द की प्राप्ति अनन्त सिद्धपद जो है, सिद्धपद जो है, मोक्षपद, वह पर्याय है। सिद्धपद-मोक्षपद, वह पर्याय है—वह अवस्था है। ऐसे **मोक्ष का उपाय....** उसकी पर्याय की प्राप्ति का उपाय **और मोक्ष का स्वरूप....** आत्मा के मोक्षमार्ग से अन्तर स्वरूप की दृष्टि, ज्ञान और रमणता के निर्विकल्पभाव से जो पूर्ण मोक्षदशा प्रगट हो, उसकी बात कहूँगा, कहते हैं। मुमुक्षुओं को मोक्ष का उपाय और मोक्ष की बातें कहूँगा। आहाहा! उसे पुण्य ऐसे होता है और फिर उसके फल में ऐसा होता है और उसके फल में यह होता है। यह बात हम नहीं कहेंगे। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात आवे परन्तु यह बात वीतरागता के लिये आवे। समझ में आया? पुण्य के परिणाम राग हैं और राग से बन्धन है। यह बात वीतरागता बतलाने के लिये आती है। उपाय बतलाने के लिये आती है, ऐसा कहते हैं। परन्तु वह रखनेयोग्य है और करनेयोग्य है, ऐसा नहीं आता। आहाहा! चन्दुभाई! ऐसी बातें हैं, बापू! दुनिया से वीतराग का मार्ग कोई अलग है।

यह **स्वरूप बतलाने की कामना से....** अर्थात् इच्छा-वृत्ति उठी है। **तथा निर्विघ्न शास्त्र की परिसमाप्ति...** मांगलिक है न। शास्त्र पूर्ण हो, भाव पूरे हों। इन **आदिरूप फल की अभिलाषा से, इष्टदेवता विशेष को नमस्कार करके कहते हैं:—** लो! अब अब स्वयं समाधिशतक के कर्ता जो पूज्यपादस्वामी सन्त मुनि-दिगम्बर मुनि। जैनदर्शन में अनादि का दिगम्बर मुनि का ही धर्म था। अनादि का यह मार्ग है। महाविदेह में यह मार्ग है। पश्चात् तो यह बीच में दुष्काल पड़ा बाहर, उसमें से यह श्वेताम्बर पन्थ निकला है।

वह वस्तु की दृष्टि से विपरीत से निकला है। बापू! कठिन पड़े, भाई! समझ में आया?

भगवान के पश्चात् ६०० वर्ष में श्वेताम्बर पन्थ जैन में से निकला। सनातन जैन में से विपरीत दृष्टि होकर वह पन्थ निकला है। और उससे यह स्थानकवासी पन्थ तो बाद में, पन्द्रह सौ वर्ष बाद निकला है। उसमें से—श्वेताम्बर में से (निकला है)। आहाहा! अरे रे! यह भी विपरीत दृष्टि होकर उसमें से निकला है। उसे जैनधर्म नहीं कहते। चन्दुभाई! ऐसा बहुत कठिन है, बापू! लोगों को गले उतरना बहुत कठिन। ऐई! पोपटभाई! जिसमें पड़े, उसे मानकर बैठे होते हैं, उसमें से उसे कहना कि यह मार्ग नहीं। आहाहा! स्वरूपचन्दभाई! सत्य तो यह है, प्रभु! आहाहा! ऐसे जो दिगम्बर सन्त जो अनादि की चीज़ है, वह चीज़ वे दिगम्बर सन्त कहते हैं कि मैं मोक्ष की कामना, मोक्ष का स्वरूप बतलाने की इच्छा, वृत्ति, कल्पना-विकल्प हुआ है, इसलिए यह शास्त्र होता है, शास्त्र होता है, उसे रचते हैं—ऐसा कहने में आता है।

पहला श्लोक। मुनि तो जंगल में रहते थे। भगवान के समय में और भगवान के बाद ६०० वर्ष तक। सन्त जंगल में रहते थे। गाँव में मुनि आते नहीं। गाँव में भिक्षा (आहारचर्या) के लिये आवें। फिर भिक्षा लेकर चले जायें। समझ में आया? उसमें भिक्षा के लिये आये हों और कोई लोग इकट्ठे हुए हों तो कुछ प्ररूपणा आवे तो आ जाये। आहाहा! ऐसा अनादि सनातन वीतरागमार्ग का स्वरूप था। उस वीतराग मार्ग के स्वरूपवान स्वयं समाधिशतक बनानेवाले, वे कहते हैं कि मैं मांगलिक करता हूँ। पहले टीकाकार ने मांगलिक किया।

येनात्माऽबुद्ध्यतात्मैव परत्वेनैव चापरम्।
अक्षयानन्त बोधाय तस्मै सिद्धात्मने नमः॥ १॥

इसका **अर्थ - जिसके द्वारा आत्मा, आत्मारूप से ही जाना गया है....** आहाहा! आहाहा! स्वयं अपनी बात करते हैं। मुझे मेरा आत्मा मेरे भान से-ज्ञान से ज्ञात हुआ है। आहाहा! **और.... 'अपरं परत्वेन एव' पर, पररूप से ही जाना गया है,....** है। आहाहा! मैं एक ज्ञानस्वरूपी भगवान हूँ, ऐसा मुझे ज्ञात हुआ है और यह दया-दान विकल्पादि वृत्ति उठती है, वह पर है-ऐसा मुझे ज्ञात हुआ है। समझ में आया? स्व है, वह स्व-पने ज्ञात

हुआ है। ज्ञान और आनन्द का नाथ प्रभु मैं स्व हूँ, वह ज्ञात हुआ है। और रागादि शरीरादि, वाणी, वाणी, आदि कर्म आदि, ये सब पर हैं, वैसे पररूप से ज्ञात हुए हैं। आहाहा! समझ में आया? देखो! इसका नाम भेदज्ञान। इसका नाम सम्यग्दर्शन की-ज्ञान की कला। आहाहा!

जिसके द्वारा.... 'आत्मा आत्मा एव' 'एव' है न? .... आहाहा! **और.... 'अपरं परत्वेन एव' पर, पररूप से ही जाना गया है, उस.... 'अक्षयानन्तबोधाय'** आहाहा! **अविनाशी अनन्त ज्ञानस्वरूप सिद्धात्मा को नमस्कार हो।** जिसे ऐसा ज्ञात हुआ, उसे नमस्कार। मुझे भी ऐसा ज्ञात हुआ, उसे मैं मुझे नमस्कार करता हूँ। आहाहा! भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप विराजमान है। ऐसा अन्तर में-भान में ज्ञात हुआ है। रागादि पर हैं, वैसा ज्ञात हुआ है। ऐसा जो सिद्ध भगवान अथवा मेरा सिद्धस्वरूप, उसे मैं नमस्कार करता हूँ। समझ में आया? ऐसा कहकर यह मंगलाचरण-मांगलिक किया है। सिद्धात्मा को **अविनाशी अनन्त ज्ञानस्वरूप....** सिद्ध भगवान, जिन्हें पूर्ण ज्ञान और आनन्द हुआ, उन्होंने पर को पर जाना, स्व को स्व जाना, ऐसा केवलज्ञान प्रगट हुआ। ऐसा ही वह मैं भी ऐसा ही हूँ। आहाहा! उसे नमस्कार करता हूँ। अब इसकी टीका आयेगी।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)